Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

प्राचीन भारत में वर्ण और आश्रम व्यवस्था का प्रभाव: एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. जे.के. संत*

* सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान) शासकीय तुलसी महाविद्यालय, अनूपपुर (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – प्राचीन भारतीय समाज का मुख्य आधार गुणानरूप कर्म है क्योंकि जो जैसा कर्म करेगा, जैसा व्यवहार करेगा, जैसा आचरण करेगा उसको वैसा ही समाज के दायित्वों को सौपा जायेगा जिससे वो अपना कर्म का निष्पादन अच्छी तरह से कर सके। यही कारण है कि प्राचीन भारत में प्रतिपादित भारतीय समाज रचना वर्ण व्यवस्था एवं आश्रम संस्था पर आधारित है, वर्ण व्यवस्था सत, रज एवं तम त्रिगुणात्मक सृष्टि तत्व पर अवलम्बित है।[1] इन तीनों गुणों में जो गुण मनुष्य में सर्वाधिक पाया जाता है वह उसी पर प्रवृत्त हो जाता है।[2] सत्वगुण ज्ञान, बुद्धि, विवेक का , तमो गुण अज्ञान का और रजो गुण राग व द्वेष का प्रतीक है, ये गुण प्रणियों के शरीर में समाहित होते है।[3] इन तीनों गुणों में से किसी एक गुण का आधिक्य हो जाने पर मनुष्य उसी गुण के आधार पर स्वाभाविक कर्म में रत हो जाता है। और इन्ही अच्छे- बुरे कर्मो के आधार पर विभिन्न योनियों में पुनर्जन्म लेता रहता है।[4] इस प्रकार किसी भी वर्ण में जन्म लेना पूर्व जन्म के कर्मो और गुणों के आधार पर होता है। इस प्रकार भारतीय समाज रचना का वास्तविक तत्व स्व-कर्तव्य ही है। शास्त्रों में इसे स्वधर्म की संज्ञा प्रदान की गई है।[5] इसीलिये गुणानुरूप स्वाभाविक कर्म के आधार पर ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शुद्र चार वर्णों की रचना की गई है। सत्य गुण की प्रधानता ब्राम्हण में रजो गुण की अधिकता क्षत्रिय में एवं अल्पाधिक तमोगुण का प्रावल्य वैश्य तथा शूद्र में माना गया है। गुणकर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का उल्लेख महाभारत एवं गीता में भी मिलता है।[6]

1. **समाज रचना तथा राज्यव्यवस्था का घनिष्ट सम्बन्ध –** तीनों गुणों सत, रज एवं तम पर आधारित वर्ण व्यवस्था समाज रचना की रीढ है। और राज्यव्यवस्था से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। यही कारण है कि प्राचीन भारत में जहाँ समाज रचना का निरूपण किया गया है वही पर इसे कायम रखने के लिये राज्यव्यवस्था पर भी प्रकाश डाला गया है। इस संबंध में मनु की कथन है कि अपने-अपने धर्म में संलग्न सब वर्णो और आश्रमों की रक्षा करने वाले राजा का सृजन ब्रम्हा ने किया है।[7] राजा का परम कर्तव्य है कि वह सभी वर्णों को अपने-अपने धर्म में स्थित करें तथा जो इसके विरूद्ध आचरण करे उसे दण्ड देकर निजकर्म में लगावें।[8] इस प्रकार स्पष्ट है कि राज्यव्यवस्था के अभाव में हम समाज- रचनाके अस्तित्व की कल्पना भी नही कर सकते। अत: सामाजिक व्यवस्था को राज्यव्यवस्था पर अवलम्बित कर दिया गया हैं।

2. **वर्ण व्यवस्था की आवश्यकता क्यों हुई –** इस संदर्भ में मनु ने प्रकाश डालते हुये कहा है कि लोक बुद्धि के लिये ब्रम्हा ने मुख से ब्राम्हण, बाहु से क्षत्रिय, उरू से वैश्य और पैर से शूद्र की सृष्टि की।[9] उल्लेखनीय है कि वर्णव्यवस्था के उद्भम का यह स्वरूप सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरूष सूक्त मंत्र में उपलब्ध होता है। युजुर्वेद में भी यह कल्पना व मंत्र ज्यों का त्यों पाया जाता है।[10] इस प्रकार मनु स्मृति में ब्राम्हण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र के रूप में जिन चार वर्णों की कल्पना की गयी है ये चारों वर्ण अपनी प्रकृति जन्य भिन्न-भिन्न कर्मो का सम्पादन करते है। इन वर्णो के नामकरण का आधार इनका कर्म है। मनुस्मृति में स्पष्ट कहा गया है कि महातेजस्वी ब्रम्हा ने इस सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा के लिये ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में अलग-अलग कर्मों की सृष्टि की। इस प्रकार वर्णव्यवस्था में गुणानुरूप कर्म की ही प्रधानता दृष्टिगट होती है। उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार मुख से ब्राम्हण, बाहु से क्षत्रिय, उरू से वैश्य और पैर से शूद्र की सृष्टि की। ब्राम्हण का कार्य पठन-पाठन, अध्ययन-अध्यापन, क्षत्रिय का कार्य राजा या स्वामी के रूप में देश की रक्षा करना, अस्त्र-शस्त्र एवं हथियारों का प्रयोग करना साथ ही साथ रथ, हाथी, घोड़ा एवं पैदल सैनिकों का भी नेतृत्व करना, राज्य में सुख-शान्ति कायम रखना, वैश्य का कार्य व्यवसाय एवं कृषि कार्य एवं शूद्र का कार्य सेवा करना। वर्णव्यवस्था में श्रेष्ठ एवं निम्न का होना मायना नही रखता जब तक सभी वर्णों के व्यक्ति एक दूसरे का सहयोग नही करेगें तब तक राष्ट्र, समाज की समस्याओं का समाधान नही किया जा सकता। जिस प्रकार खाना खाने के लिये सभी उगलियों की आवश्कता होती है चाहे वो छोटा हो या बड़ा जब तक एक होकर कार्य नही करेगें तो भोजन भी नही किया जा सकता । इसी तरह शरीर के समस्त अंग अपने-अपने जगह पर महत्वपूर्ण है। पैर से शूद्र का उत्पत्ति माना जाता है इसका मतलब ये नही है कि पैर का महत्व कुछ भी नही है, जब अपने से बड़े लोगों जैसे माता-पिता गुरूजनों आदि का आदर सम्मान किया जाता है तब सबसे पहले मस्तक झुकाते हुये चरण स्पर्श करते है, तब उस समय पैर अपने जगह पर श्रेष्ठ है। समयानुसार शरीर के समस्त अंग अतिमहत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार समाज में समयानुसार सभी वर्णों का अपने-अपने जगहों में अतिमहत्वपूर्ण स्थान है। उदाहरण स्वरूप जब एक ब्राम्हण परिवार में वैवाहिक या अन्य सांस्कारिक कार्यक्रम होता है तब घर की साफ-सफाई, नगाडे, बैण्ड बाजे एवं शहनाईयाँ बजाने का काम शूद्र ही करता है तब जाके वैवाहिक या अन्य सांस्कारिक कार्यक्रम सम्पन्न होता है। इसी तरह जब शूद्र के यहाँ वैवाहिक या अन्य सांस्कारिक कार्यक्रम होता है, तब पूजा-पाठ या अन्य धार्मिक कार्य संपन्न

कराने ब्राम्हण भी शूद्र के यहाँ जाता है। इस तरह सभी वर्ण एक दूसरे पर आधारित हैं। एतदर्थ मनु की उक्ति है कि जन्म से तो सभी शूद्र ही पैदा होते है किन्तु संस्कार होने से उनकी द्विजातीय संज्ञा होती है।[11] इस प्रकार मनुस्मृति में ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र के रूप में जिन चार वर्णो की कल्पना की गयी है ये चारों वर्ण अपनी प्रकृति जन्य भिन्न-भिन्न कर्मो का सम्पादन करते है। इन वर्णो के नामकरण का आधार इनका कर्म है। इस प्रकार वर्णव्यवस्था में गुणानुरूप कर्म की ही प्रधानता दृष्टिगत होती है। इस आधार पर शतपथ ब्राम्हण में राजन्य (क्षत्रिय), वैश्य तथा शूद्र इन चारों वर्णो का उल्लेख किया है।[12] याज्ञवल्क्य ने भी इन चार वर्णो की चर्चा की है।[13]

3. चारों वर्णों के सामान्य धर्म का एक जैसा निरूपण-मानव धर्म शास्त्र में इन चारों वर्णो के समान्य धर्म का एक जैसा निरूपण किया गया है। अहिंसा (दूसरे को किसी प्रकार का कष्ट मन, वचन एवं कर्म से न पहुँचाना) सत्य (हमेशा सत्य बोलना झूठ नही बोलना चाहिये) अस्तेय (बिना पूँछे किसी की कोई भी वस्तु न लेना) शूद्धता, इन्द्रियों को वष में रखना, श्राद्ध कर्म, अतिथि सत्कार, दान, सरलता, अपनी स्त्री से सन्तानोत्पादन एवं असूया (दूसरे के शुभ कार्य में द्वेष का न होना) यह संक्षेप में चारों वर्णो का धर्म मनु ने कहा है।[14]

चरों वर्णो के कर्म- मनुस्मृति में मनु ने सभी चारों वर्णों का कर्मों का विवेचन इस प्रकार किया है-

1. **ब्राम्हण का कर्म-** ब्राम्हण का कर्म है पढ़ना-पढ़ाना लोगों को अच्छे जीवन जीने का उपाय बताना, यज्ञ करना, कराना, दान देना वा लेना, मार्कण्डेय पुराण आदि में भी इसका विशेष वर्णन मिलता है।[15] ब्राम्हण का उत्तरदायित्व है कि वह किसी भी हिंसा और किसी से द्रोह न करते हुये अपनी जीविका चलायें।

2. **क्षत्रिय का कर्म-** क्षत्रिय का मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना कतिपय अन्य स्मृतियों में भी ऐसा ही विवेचन किया गया है।[16]

3. **वैश्य का कार्य-** वैश्य का मुख्य कार्य व्यापार करना, खेती करना, पशुओं का रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, ब्याज लेना आदि अन्य ग्रंथों में भी यही व्यवस्था वर्णित है।[17]

शूद्र का कार्य- ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णो की सेवा करना शूद्रों का प्रधान कर्म है।[18] पशुपालन और क्रय विक्रय उनकी जिविका के साधन है। महाभारत आदि में चारों वर्णो के इन्ही कर्मो का विवेचन मिलता है।[19] मानव धर्म के कतिपय श्लोकों से यह ज्ञात होता है कि सामाजिक स्तर पर शूद्रों को हीन स्थिति प्राप्त है। उनकी स्थिति अत्यधिक निम्न है। किन्तु यह व्यवस्था परिस्थिति जन्य है, शाश्वत नहीं। क्योंकि स्मृतिकारों के अनुसार वही शूद्र है जिसका आचरण दूषित और गंदा है। यदि कोई ब्राम्हण भी क्रोध, काम, लोभ आदि के अत्यंत वषीभूत है, तो वह शूद्र के तुल्य है। यहा तक व्यवस्था कि यदि स्वामी सन्तानहीन हो तो सेवा करने वाले शूद्र को ही उसके लिये पिण्डदान करना चाहिये। यदि स्वामी बूढ़ा या दुर्बल हो तो शूद्र को उसका सभी प्रकार से भरण पोषण करना चाहिये।[20]

प्राचीन भारत में चार वर्णो के साथ ही साथ चार आश्रमों की भी व्यवस्था की गई है जो निम्नानुसार है-

ये चार आश्रम ब्रम्हचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास नाम से अभिहित हैं।[21]

1. **ब्रम्हचर्य आश्रम-** बाल्यावस्था ब्रम्हचर्य आश्रम के लिये उपयुक्त है। यह अवस्था विद्यार्जन और ब्रम्हचर्य पालन में इस आश्रम के मुख्य कर्तव्य निषचित किये गये है। ब्रम्हचर्य में इन्द्रिय निग्रह, आत्मसंयमन, विनय, घृति आदि सद्गुणों का समावेश होता है। साधारणतया यह आश्रम 25 वर्ष तक की आयु के लिये स्तुल्य माना गया हैं। अखण्ड ब्रम्हचर्य व्रत का पालन करता हुआ ब्रम्हचारी क्रम से वेदों या दो वेद या एक ही वेद पढ़ कर गृहस्त आश्रम में प्रवेष करें। जीवन का दूसरा चरण विवाह कर के गृहस्त आश्रम में वितायें ऐसा मनु का कथन है।[22] इस ब्रम्हचर्य आश्रम में उदारता बरतते हुये भी भारतीय राजशास्त्री 25 वर्ष की आयु तक ब्रम्हचर्य आश्रम में निवास करने के पक्षधर है।

2. **गृहस्थाश्रम-**यह आश्रम 25 वर्ष के बाद ब्रम्हचर्य आश्रम के बाद की अवस्था का द्योतक है। विद्यार्जन समाप्त करके शरीर और मन सुदृढ़ हो जाने पर कुटुम्ब का बोझ धारण करने की योग्यता अर्थात तारूण्य प्राप्त हो जाने पर ब्रम्हचर्य आश्रम को पार कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिये। यह आश्रम तीनों आश्रमों का आधार है। यह सबसे श्रेष्ठ आश्रम है, क्योंकि इसके द्वारा ब्रम्हचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी आश्रमों की रक्षा होती है।[23] जैसे सभी नदी-नद समुद्र में ही आश्रय पाते है वैसे ही सभी आश्रमवासी गृहस्थाश्रम से ही सहारा पाते है। यही कारण है कि गृहस्थाश्रम पर कर्तव्यों का बोझ बहुत बड़ा है। मानव धर्म शास्त्रकार ने गृहस्थ आश्रम को सर्वश्रेष्ठता प्रदान करते हुये कहा है कि जिस प्रकार वायु के आश्रम से सब प्राणी जीते है, उसी प्रकार सब आश्रम गृहस्थाश्रम के सहारे जीते हैं। इसलिये गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों में श्रेष्ठ होता हैं

3. **वानप्रस्थ आश्रम-** गृहस्थ आश्रम के पालन क उपरान्त आयु के तृतीय चरण 50 वर्ष के पश्चात् नियम पूर्वक वानप्रस्थ आश्रम गृहण करें। इस आश्रम के कष्ट से जीविकोपार्जन करते हुये अरण्य में रहना पड़ता है और ईश्वर चिन्तन में अपना काल व्यतीत करना पड़ता है। मनु का कथन है कि गृहस्थ आश्रम में रहते हुये जब यह देखे कि अपने शरीर में झुर्रियाँ पड़ गयी है, केश श्वेत हो गए है और अपने पुत्र के भी पुत्र हो चंके हैं, तब वन के आश्रम ग्रहण करना चाहिये। वानप्रस्थ आश्रमी को मृग चर्म या वल्कन पहनना चाहिये। जटा, दाढ़ी,मूँछ और नख को नित्य धारण करना चाहिये। आश्रम में आये हुये अतिथि का जल, मूल फलादि से सत्कार करना चाहिये। इस प्रकार इन्दिय गयी होकर कठोर श्रम के साथ वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने का परामर्श किया गया है।

4. **सन्यास आश्रम-**वानप्रस्थ आश्रम के पालन के उपरान्त आयु के चतुर्थ चरण 75 वर्ष के पश्चात् नियम पूर्वक सन्यास आश्रम ग्रहण करना चाहिये। संगों का पूर्ण परित्याग कर सन्यासाश्रम के वृत पालन में सन्नद्ध होना चाहिये। मनु का कथन है कि देव ऋण, ऋषि ऋण और पितृ ऋण से उऋण होना, विधि पूर्वक वेदों का अध्ययन कर धर्मानुसार पुत्रों को उत्पन्न कर तथा यथाशक्ति यज्ञानुष्ठान करके और सारी सम्पत्ति दक्षिणा स्वरूप दान करके ब्राम्हण को मोक्ष साधक सन्यासाश्रम ग्रहण करना चाहिये। सर्वभूतों में मैं हूँ और मुझमें सर्वभूत है इस वृत्ति का आश्रय लेकर सन्यासी को स्वराज का अनुभव करना पड़ता है। इसी से उसका यह स्वराज वैक्तिक न होकर सर्वव्यापी होता है। सन्यासी को चाहिये कि पवित्र भूमि पर चले, कपड़े से छानकर पवित्र जल पीवे, सत्य से ववित्र वचन बोले और मन से पवित्र आचरण करे।

निष्कर्ष- स्पष्ट है कि जिस प्रकार वर्ण व्यवस्था का आदर्श ब्राम्हाणत्व की प्राप्ति है उसी प्रकार आश्रम व्यवस्था का आदर्श मोक्ष की प्राप्ति है।[24] सांसारिक एवं सामाजिक कल्याण इन दोनों ही आदर्शों में मूलत: सर्वत्र अन्तर्निहित है।

मनुस्मृति में प्रतिपादित गुणानुरूप कर्म की व्यवस्था तथा गृहस्थाश्रम की सर्वश्रेष्ठता, इसके ज्वलंत प्रमाण है। इस प्रकार भारतीय वर्णाश्रम व्यवस्था विवेक युक्त जीवन विकास की प्रक्रिया पर अवलम्बित है, मूल मान्यताओं पर नहीं। सही कारण है कि विदेशी विद्धानों ने भी बेहिचक इसके महत्व को स्वीकार किया है। महात्मा गांधी ने तो मुक्त कण्ठ से वर्णाश्रम धर्म की प्रशंसा की है। उन्होंने कहा है कि वर्णाश्रम धर्म विश्व धर्म है जिसका हिन्दू धर्म शास्त्रों में सविस्तार वर्णन किया गया है। यह अध्यात्मिक अर्थशास्त्र का नियम है। अपने जीवन में उच्च प्रकार के व्यवसाय करने के लिये अपनी उत्साह शक्ति को स्वतंत्र रखने की व्यवस्था उस योजना में हैं। इसी प्रकार उनके अन्य कथन भी उद्धरणीय हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. सत्वं रजस्तमस्चैव त्री विद्यात्मनौ गुणान।
   येत्याप्येमान्सिथतोभावन्महान्सर्वान् शेषत:। मनु0 12/25
2. मनु0 12/25
3. मनु0 12/26
4. मनु0 12/43-81
5. स्वै धर्मे निदिष्टानां सर्वेशामनु पूर्वश:। मनु0 7/35
6. सर्व ब्राम्हिदं जगत कर्मणा वर्णतां गतम्। शान्ति पर्व 188/10
7. स्वे-स्वे धर्मे निविश्षनां सर्वेशामनुपूर्वश:
8. तस्माद्राज्ञा प्रयत्नेन सर्वेवर्णा: स्वधर्मत: प्रवर्त्यन्तेन्यथा दड्या स्थाप्याश्चैव स्वकर्मसु।। मार्कण्डेय पु. 25/36
9. लोकानां तु विवृद्धयर्थ मुख वाहु रूपादत:। ब्राम्हणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तवत्।। मनु0 1/31
10. ब्राम्हाणौअस्य मुखमासीद वाह राजन्य: कृत: उरू तदस्य श्द्धेश्य: पद्भयां शूद्रों अजायत।
11. गार्मैहतौमैर्जात कर्म चाल मौंजीनिबन्धने:। वैजिक गार्भिकं चैनौद्धिजामपभृज्यते।। मनु0 2/27
12. शतपथब्राम्हण 5/4/6/9
13. ब्रम्हा क्षत्रिय पिद् शूद्रा वर्णास्तवाधास्त्रयोंक्षिजा। पिण्डेकादि श्मषानान्तास्तेषां वे मन्त्रत: क्रिया:।। याज्ञ0 1/20
14. अहिन्सा सतमयस्तेयं शौचमिद्रियनिग्रह: द्याद्धकर्मातिधेयं च दानमस्ते धमार्जवम्। प्रजनं स्वेषु दारेषु तथा चैवान सूयतां। एतं सामासिकं धर्म चातुर्वर्ण्येदब्रवीमनु।।
15. दनामध्ययन यज्ञो ब्राम्हाणास्यत्रिधोदित:। धर्मोनान्यश्चतुर्थोस्ति धर्मस्तस्या पदंविना।। मार्कण्डेय पु0 26/3
16. प्रजानां रक्षणं दानमिन्याअध्ययन मैव च। विश्येश्व् प्रसक्तिश्चसेत्रियस्य समासत:
17. मनु0 1/60
18. मनु0 1/61
19. शान्तिपर्व 186/1-8, वषिष्ठ 2/13-16
20. देय: पिण्डोअपत्याय मर्त्रत्यों वृद्ध दुर्बलो। शान्ति पर्व 60/35
21. ब्रम्हचारी गृहस्थश्य वानप्रस्थो यतिस्तथा। एते गृहस्थ प्रभाव श्चत्वार: पृथगाश्रमा:।। मनु0 6/87
22. मनु0 4/1
23. सर्वेषामपि चैतेयां वेद स्मृति विधानत:। गृहस्थ उच्येत श्रेष्ठ: स: त्रीनेतन्वि भर्तिहि।। मनु0 6/86
24. इष्ट्वा च शक्तितौ यज्ञैर्मनो मोक्षे निवैंश्यैत।। मनु0 6/36

****